International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 3; June 2016; Page No. 62-64

हिन्दी साहित्य में रचना–प्रक्रिया और लेखकीय सजगता के प्रश्न

डॉ. संगीता गोगिया[1], डॉ. नन्दकिशोर मौर्य[2]

[1] प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

[2] प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, गौरीदेवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

सारांश

रचना साहित्यकार की विशिष्ट कल्पना प्रक्रिया का परिणाम है। रचना–प्रक्रिया कलाकार के मस्तिष्क में घटने वाली आन्तरिक प्रक्रिया से सम्बद्ध होती है जिसके द्वारा एक रचना अन्तरंग से बहिरंग कलेवर धारण करती है। रचना–प्रक्रिया का प्रश्न अब हिन्दी आलोचना के लिए नया नहीं है। किसी रचना की संपूर्ण सृजनात्मक प्रक्रिया का अध्ययन अब हिन्दी आलोचना में स्वीकृत हो चुका है। "रचना–प्रक्रिया रचनात्मक अनुभूति की प्रक्रिया है।" इसका संबंध रचनाकार की संपूर्ण चेतना से है। रचनाकार अपनी अनुभूति के चरम उद्वेग–क्षण में रचना को अभिव्यक्त करने के लिए जिन माध्यमों को प्रयुक्त करता है वे सभी रचना–प्रक्रिया के उपादान होते हैं। इसमें रचनाकार की अनुभूति और संवेदना से लेकर उनकी अभिव्यक्ति–तक के सारे उपादान शामिल होते हैं। कल्पना रचना–प्रक्रिया की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। यही रचना–प्रक्रिया का आधार है, इसी पर सर्जक अभिव्यंजना से पूर्व तैयारी करता है। यहीं पर वह रचना के शिल्प को गढ़ता है, उसमें रंग भरता है, यहीं पर सर्जक अभिव्यक्ति से पूर्व रचना के नए संसार को बहुत संजीदगी से साज–संवार लेता है, जांच–परख लेता है।

मूल शब्दः कल्पना, पत्रिका, रचना, कहानी, साहित्य, समकालीनकहानी, रचना–प्रक्रिया, सजगता, वस्तुवादी चिन्तन, सृजन, दृष्टिकोण

प्रस्तावना

रचना–प्रक्रिया का प्रश्न अब हिन्दी आलोचना के लिए नया नहीं है। किसी रचना की संपूर्ण सृजनात्मक प्रक्रिया का अध्ययन अब हिन्दी आलोचना में स्वीकृत हो चुका है। "रचना–प्रक्रिया रचनात्मक अनुभूति की प्रक्रिया है।" इसका संबंध रचनाकार की संपूर्ण चेतना से है। रचनाकार अपनी अनुभूति के चरम उद्वेग–क्षण में रचना को अभिव्यक्त करने के लिए जिन माध्यमों को प्रयुक्त करता है वे सभी रचना–प्रक्रिया के उपादान होते हैं। इसमें रचनाकार की अनुभूति और संवेदना से लेकर उनकी अभिव्यक्ति–तक के सारे उपादान शामिल होते हैं।

रचना साहित्यकार की विशिष्ट कल्पना प्रक्रिया का परिणाम है। रचना–प्रक्रिया कलाकार के मस्तिष्क में घटने वाली आन्तरिक प्रक्रिया से सम्बद्ध होती है जिसके द्वारा एक रचना अन्तरंग से बहिरंग कलेवर धारण करती है। 'रचना का क्षेत्र सर्जक के अन्तः जगत् से लेकर बहिर्जगत् तक होता हुआ आस्वादक की आस्वाद प्रक्रिया तक फैला हुआ है इसलिए, इस विराट् रचनाभूमि को विश्लेषित कर अपनी स्थिर धारणा बना लेना दुष्कर कार्य है। यही कारण है कि सृजन के सम्बन्ध में अनेक विरोधाभासी दृष्टियां और धारणाएं विद्यमान हैं। यहां विचारणीय प्रश्न यह है कि कला रचना रचनाकार के चित्त की अचेतन क्रिया है या सचेतन क्रिया? इसी से जुड़ा एक दूसरा प्रश्न यह है कि रचना प्रयत्न जन्य साध्य है या अनायास उत्पन्न साध्य ? इन प्रश्नों को दो दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है।

रोमानी चिन्ताधारा के कवि आचार्य, सृजन को सर्जक के मन की अचेतन क्रिया मानते हैं। 'वड्र्सवर्थ' ने हृदय के स्वतः निसृत आवेगों के शब्द–विधान को ही कविता कहा था। 'फ्रायड' ने 'अवचेतन' स्थिति की कल्पना करके रचना–प्रक्रिया और कला सृष्टि को अवचेतन की विशिष्ट उपज कहा। उन्होंने रोमानी चिन्ताधारा के रचनाकारों की धारणाओं को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हुए नई दृष्टि प्रदान की। हिन्दी के आधुनिक कलावादी कवि अज्ञेय, धर्मवीर भारती, अशोक वाजपेयी इत्यादी भी सृजन को अनायास उत्पन्न, विशिष्ट मनः अवस्था की उपज या अचेतन का लीला विधान मानते हैं। अज्ञेय ने तो कहा भी है– "अनुभव की अद्वितीयता और अर्थ की साधारणता प्रतिभा के ये दो इष्ट हैं, या कहा जाए कि दो ध्येयों का योग ही उसका इष्ट है। जिस प्रक्रिया से यह योग सिद्ध होता है, वही रचना प्रक्रिया है।"[4] वस्तुवादी चिन्तन परम्परा में सृजन (रचना) को एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया माना जाता है। यहां सृजन चेतन मन की चेतन क्रिया है। निर्माण है। वह इतना सरल नहीं है कि स्वतः अवतरित हो जाए। यहां सृजन को प्रतिभा और अभ्यास पर निर्भर माना जाता है। भारतीय काव्यशात्र में काव्य हेतु पर विचार करते हुए 'प्रतिभा' और 'व्युत्पत्ति' नामक दो सृजन–शक्तियों को मूलतः विवेचन के केन्द्र में रखा गया है। प्रतिभा का विवेचन करते हुए आचार्य अभिनव गुप्त ने प्रतिभा को 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा' कहा है। कला रचना की निपुणता में 'नवनवोन्मेषशालिनीप्रज्ञा' को प्रतिभा और व्युत्पत्ति नामक शक्तियों से कम महत्त्व का नहीं माना गया। कुछ आचार्यों ने 'अभ्यास' नाम की एक तीसरी शक्ति का उल्लेख किया है। सृजन सायास की जाने वाली क्रिया है। अभ्यास से सृजन को श्रेष्ठता प्रदान की जा सकती है इसलिए आचार्य मम्मट ने इन तीनों को सृजन–शक्ति कहा है।

वास्तव में केवल हृदय के स्वतः निसृत आवेगों के शब्द–विधान को कविता (रचना) नहीं कहा जा सकता। या यों कहें कि संवेगों के स्वतः निसृत आवेग वाणी का माध्यम ग्रहण करने मात्र से कला का रूप नहीं ले सकते। वे कला तभी बनेंगे जब विवेक द्वारा उसके अनगढ़ स्वरूप को एक सुनिश्चित शैल्पिक आधार देकर प्रस्तुत किया जाएगा। कहना न होगा कि उत्कृष्ट कलाकृति के लिए संवेगों के साथ–साथ विवेक सम्मत शैल्पिक आधार यानी रचना के नक्शे व स्थापत्य को भी बराबर का दर्जा दिया जाएगा। इन दोनों के संयोजन और संतुलन से कला का जन्म होता है। अतः कहा जा सकता है कि सृजन न तो पूर्णतः अचेतन मन का स्वतः स्फूर्त आवेग है और न ही पूर्णतः सचेतन अवस्था का प्रयास मात्र सृजन उपरिविवेचित दोनों ही स्थितियों का समुच्चय है।"[5]

यहां यह प्रश्न सहज ही उठता है कि क्या कला रचना की कोई ऐसी प्रक्रिया निर्देशित की जा सकती है जो व्यावहारिक रूप से सर्जक और आलोचक दोनों को समान रूप से मान्य हो? क्योंकि आलोचक यह मान कर चलता है कि एक सर्जक को अपनी रचना की प्रक्रिया में तटस्थ नहीं रहना चाहिए। रचना के प्रति

रचनाकार की पक्षधरता या प्रतिबद्धता उसकी सृष्टि यानी रचना को विशिष्टता प्रदान करती है। दूसरी ओर सर्जक यह मान कर चलता है कि रचना–प्रक्रिया को आलोचना क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है। आलोचक रचना पर विचार करते समय रचना–प्रक्रिया पर अपनी राय न दे तो ही ठीक है।

रचना–प्रक्रिया के सम्बन्ध में दोनों ही स्थितियां दुराग्रहों से प्रेरित हैं। रचनाकार और आलोचक दोनों को ही यह चाहिए कि वे पारस्परिक सहयोग, सहिष्णुता, संवेदना, विवेक और दृष्टिकोण के माध्यम से सृजन प्रक्रिया और आस्वादन पक्ष यानी आलोचना पर विचार कर सकते हैं। क्योंकि मूलतः ये दोनों सृजन ही हैं। 'अपने सामाजिक दायित्व बोध के कारण जिस तरह रचना का जीवन और जगत, व्यक्ति और समाज, स्थान और काल से जो जुड़ाव है वही जुड़ाव इनसे आलोचना का भी है। सृजन की सार्थकता जिस तरह आस्वादन में निहित है उसी प्रकार आलोचना की भी। जिस तरह सृजन सर्जक के मूल्यांकन का माध्यम बनता है ठीक उसी तरह आलोचना कर्म भी उस विवेक का नाम है जो स्वयं आलोचक के मूल्यांकन का माध्यम बनती है और सामाजिक उपादेयता में अपनी तथा आलोचक दोनों की भूमिका को रेखांकित करता है। जिस तरह सृजन जीवन कर्म और जीवन–संघर्ष से जन्म लेता है और सामाजिक दायित्व को पूरा करता है, आलोचना भी अन्त तक इसी मुख्य सरोकार को पूरा करती है।'[6]

डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव ने रचना–प्रक्रिया पर विस्तार से विचार करते हुए लिखा है– "जार्ज हेली ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द पोएटिक प्रोसेस' में संकेत किया है कि प्रक्रिया कोई कलात्मक कृति जिसका परिणाम होती है, एक साथ ही अन्वेषण और आत्मान्वेषण दोनों ही है, वह एक प्रकार का आत्मबोध है जो रचनात्मक संसार को अधिक वास्तविक बना देता है। हर्बर्ट रीड ने संपूर्ण रचनात्मक प्रक्रिया को बहुत से मूल रचनात्मक क्षणों का आकलन माना है। जाकमारितां ने रचनात्मक अंतः प्रेरणा (इंट्यूशन) को साहित्यिक मूल्यांकन का आधार स्वीकार किया है। हिन्दी कथाकारों में प्रेमचन्द पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने सृजनशीलता को ही 'मूल वस्तु' माना है। हमारी दृष्टि में प्रक्रिया एक विशेष अनुभव व्यापार है जो रचना को जन्म भी देता है और अन्य अनेक उपकरणों के साथ रचना में मूर्त भी होता है।"[7]

इस समस्त विमर्श के बाद रचना–प्रक्रिया के तीन स्तर सामने आते हैं। रचना–प्रक्रिया एक जटिल अनुभव है। सर्जक पहले स्तर पर बाह्यजगत के यथार्थ को अन्तर्भूत करता है। सर्जक का संस्कार, यथार्थवादी दृष्टिकोण, संवेदना के क्षेत्र में उसकी ग्रहणशीलता, तात्कालिक परिस्थितियों से उसका जुड़ाव तथा उसके स्वयं के जीवन की स्थितियां, ये सब मिल कर सर्जक की भावन क्षमता को रचकर सृजन का रूप ले लेती हैं।

दूसरा स्तर है कल्पना का जो रचना–प्रक्रिया की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। यहां कलाकार अपने मानस में कल्पना का आश्रय लेकर एक नया संसार रचता है। यह कार्य संपादित होता है सर्जक की 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा' के द्वारा। क्योंकि यही प्रज्ञा बाह्यजगत के यथार्थ को ग्रहण कर नया सृजन करने की पृष्ठभूमि को मानसी आकार देती है। इससे जो रचना जन्म लेती है वही सधे अर्थों में रचना कहलाती है। यही रचना–प्रक्रिया का आधार है, इसी पर सर्जक अभिव्यंजना से पूर्व तैयारी करता है। यहीं पर वह रचना के शिल्प को गढ़ता है, उसमें रंग भरता है, यहीं पर सर्जक अभिव्यक्ति से पूर्व रचना के नए संसार को बहुत संजीदगी से साज–संवार लेता है, जांच–परख लेता है।

रचना–प्रक्रिया के तीसरे स्तर पर सर्जक रचना के अभिव्यंजना–कौशल से मानस में रचे कल्पना लोक को माध्यमगत आकार देकर भावगत स्वरूप प्रदान करता है। वस्तुतः यह कार्य अमूर्त भाव–कल्पना लोक को मूर्त रूप प्रदान करना है। 'मानसलोक के 'भावन–व्यापार' से लेकर अभिव्यक्ति के साकार रूप तक रचनाकार गुजरता है, उन सब की समग्रता ही रचना–प्रक्रिया कहलाती है। जिन आन्तरिक और बाह्य प्रक्रियाओं से कला सृजन के समय कलाकार की मानसिक वृत्तियों का प्रवाह संतुलित, संगतिमय, स्वच्छन्द और प्रखर होता है जिससे उसमें सृजनात्मक शक्ति का उदय हो सके। सर्जक द्वारा की गयी ये तमाम क्रियाएं सृजनात्मक शक्ति को जागृत करने के लिए होती हैं।'[8]

रचनकार के लिए सजगता और दृष्टिकोण अत्यन्त आवश्यक है। रचनाकार जितना सजग अपने दृष्टिकोण के प्रति होता है उसे उतना ही सजग अपनी रचना–प्रक्रिया के प्रति भी होना पड़ता है। आज के रचनाकारों का सृजन विविधमुखी है इसलिए रचना–प्रक्रिया के स्तर पर उन्हें विभिन्न प्रकार के रचना रूपों से अलग–अलग स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है। मानसलोक में भावन व्यापार के स्तर से लेकर अभिव्यक्ति के समस्त अभिगमों के सफलता पूर्वक निर्वहन तक में उनका कलाकार बराबर सजग रहा है। बाह्य जगत के यथार्थ को कल्पनालोक का संस्पर्श देकर, शिल्प को साज–संवार कर अभिव्यक्त की गई कलाकृति में उन्होंने रचना–प्रक्रिया के नये आयाम रचे हैं। यह इन रचनाकारों की सृजन–शक्ति का ही चमत्कार है कि जिन–जिन विधाओं को उनकी लेखनी ने छुआ है ये श्रेष्ठता के शिखर को छू गई हैं।[9]

अनुभूति के स्तर पर जहां इन कहानीकारों की रेखाएं सूक्ष्मतर होती गई हैं, वहीं अभिव्यक्ति के स्तर पर भी यथार्थ के विविध आयाम उनकी रचनाओं में मिलते हैं। अपने व्यापक यथार्थबोध के आधार पर इन्होंने समाज के विभिन्न स्तरों और अवस्थाओं को बहुत करीब से देखा और चित्रित किया है।

इनके द्वारा किए गए समसामयिक राजनीति के वास्तविक चरित्र के विश्लेषण को देखने से पता चलता है कि किस तरह जनता ने कड़े संघर्ष, त्याग और बलिदान से देश को आजादी दिलवायी। उस समय जनता के मन में यह विश्वास था कि अब हमारे सपने पूरे हो जाएंगे और स्वराज आ जाएगा। यह देश भी खुशहाल हो जाएगा। लेकिन आजादी के बाद जनता के मोहभंग में बहुत अधिक समय नहीं लगा। जनता ने यह जल्दी ही महसूस कर लिया कि कहीं भी कुछ भी नहीं बदला। शोधकों का चोला बदल गया, शोषकों का रूप अब हमारे नेताओं ने घर लिया। इससे महंगाई, बेकारी, भेदभाव और अत्याचार और अधिक बढ़ने लगे। इन स्थितियों के प्रति जनता और बुद्धिजीवी वर्ग के मन में व्यवस्था के प्रति जो आक्रोश उत्पन्न हुआ वह इन कथाकारों की रचनाओं में पूरी शक्ति के साथ मौजूद है।

आज के अधिकांश रचनाकार विचारधारा से मार्क्सवादी हैं इसलिए इनके सृजन का दृष्टिकोण वस्तुवादी है और उनके सृजनात्मक मूल्य हैं प्रगतिशील और जनवादी। ये जीवन–ययार्थ के रचनाकार हैं।"[10] कथ्य के वैविध्य को लिए हुए उनकी रचनाओं में न केवल सामाजिक समस्याओं का चित्रण हुआ है वरन् जीवन को भीतर ही भीतर घुन की तरह सालने वाली मनोवैज्ञानिक समस्याएं भी हैं। इनकी रचनाओं का यथार्थ समूचे भारत के अंचलों, जनपदों, आदिवासी क्षेत्रों, पगडण्डियों, खेत–खलिहानों, रेलवे और रेल के क्षतिग्रस्त डिब्बों, कलकारखानों, कॉलियरियों, कोयलांचलों, महानगरों, झुग्गी–झोपड़ियों का भूखा नंगा बीमार सरपट बेतहाशा दौड़ने वाला जीता जागता यथार्थ है। इनकी रचनाओं में प्रगतिशीलता वस्तु बनकर नहीं, दृष्टि बनकर आती है। अतः इनकी रचनाओं में अमुक विषय की स्वीकृति तथा अमुक विषय की वर्जना नहीं होती। सबकी स्वीकृति होती है किन्तु उनकी प्रगतिशील जनवादी दृष्टि उस विषय के व्यवहार में मानवीय लय भर देती है।

इन समस्त परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में समकालीन कथाकारों का सृजन और दृष्टिकोण आकार लेता है। ये स्थितियां समकालीन कथाकारों के रचनाकार के मानस की भूमिका और प्रेरणा बनती

हैं। इन रचनाकारों के सृजनात्मक विवेक ने इन स्थितियों को बदलने का प्रयास किया, इनका रुपान्तरण करने की कोशिश की और अन्ततः वे भी उस स्वप्न की ओर मुड़े जो बेहतर और सुन्दर दुनिया के निर्माण के लिए हर संवेदनशील और प्रगतिशील कलाकार का पहला स्वप्न होता है। मार्क्सवादी विचारधारा के इस व्यापक परिमण्डल न इन कथाकारों के दृष्टिकोण को न केवल गढ़ा है, बल्कि भारतीय परिवेश और परिस्थितियों के अनुकूल उसे विकसित करने का विवेक भी प्रदान किया है। इस प्रकार वे मार्क्सवाद और प्रगतिशील विचारधारा से गहराई से जुड़े और समाजवादी और साम्यवादी विचारधारा के प्रभाव को सकारात्मक रूप से ग्रहण करते हुए समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य के महत्त्वपूर्ण और युग प्रवर्त्तक संस्कृति–कर्मी सर्जकों की श्रेणी में खुद को प्रमाणित किया।

संदर्भ सूचि

1. परमानन्द श्रीवास्तवः हिन्दी कहानी की रचना–प्रक्रिया; भूमिकाः पृष्ठ– 4.
2. डॉ. विमलः सौन्दर्य चिन्ताः स्वरूप एवं समस्या, पृष्ठ– 58.
3. डॉ. विमलः सौन्दर्य चिन्ताः स्वरूप एवं समस्या, पृष्ठ– 58.
4. डॉ. विमलः सौन्दर्य चिन्ताः स्वरूप एवं समस्या, पृष्ठ– 58.
5. डॉ. नन्दकिशोर नीलमः रामविलास शर्मा की सौन्दर्य चिंता; पृष्ठ 13.
6. डॉ. नरेन्द्र मोहनः समकालीन कहानी की पहचान; पृष्ठ 18.
7. परमानन्द श्रीवास्तवः हिन्दी कहानी की रचना–प्रक्रिया, भूमिकाः पृष्ठ– 5
8. डॉ. कुमार विमलः काव्य रचना–प्रक्रिया पृष्ठ 119.
9. डॉ. कुमार विमलः काव्यरचना–प्रक्रिया पृष्ठ 24.
10. डॉ. कुमार विमलः काव्य–रचना–प्रक्रियाः पृष्ठ 94.